ॐ

चतुर्थोल्लास

(श्रीरामसूक्ति:)

सर्वाधिपत्यं समरे गभीरं सत्यं चिदानन्दमयस्वरूपम् ।
सत्यं शिवं शान्तिमयं शरण्यं सनातनं राममहं भजामि ॥ १ ॥

(सनत्कुमारसंहितायां रामस्तवराजस्तोत्रात्)

वन्दे शारदपूर्णचन्द्रवदनं वन्दे कृपाम्भोनिधिं
वन्दे शम्भुपिनाकखण्डनकरं वन्दे स्वभक्तप्रियम् ।
वन्दे लक्ष्मणसंयुतं रघुवरं भूपालचूडामणिं
वन्दे ब्रह्म परात्परं गुणमयं श्रेयस्करं शाश्वतम् ॥ २ ॥

(पं० श्रीजयदेवस्य रामगीतगोविन्दात्)

सबके स्वामी, युद्धकुशल, सच्चिदानन्दमयरूप, सर्वदा सत्य, कल्याणमूर्ति, शान्तिमय, शरणागतवत्सल एवं सनातन रामको मैं भजता हूँ ॥ १ ॥ जिनका शरत्कालीन चन्द्रके समान मुख-कमल है, जो दया-सागर, शिवके धनुषको तोड़नेवाले, अपने भक्तोंके प्यारे, राजाओंके शिरोमणि, परब्रह्मस्वरूप, महान्-से-महान्, त्रिगुणमय और कल्याण करनेवाले हैं; लक्ष्मणके सहित उन सनातन पुरुष श्रीरघुनाथकी मैं

वने चरामो वसु चाहरामो नदीं तरामो न भयं स्मरामः ।
इति ब्रुवन्तोऽपि वने किराता मुक्तिं गता रामपदानुषङ्गात् ॥३॥

चिदाकारो धाता परमसुखदः पावनतनु-
र्मुनीन्द्रैर्योगीन्द्रैर्यतिपतिसुरेन्द्रैर्हनुमता ।
सदा सेव्यः पूर्णो जनकतनयाङ्गः सुरगुरू
रमानाथो रामो रमतु मम चित्ते तु सततम् ॥ ४ ॥

(कवेरमरदासस्य रामचन्द्राष्टकस्तोत्रात्)

श्रीरामतो मध्यमतोदि यो न धीरोऽनिशं वश्यवतीवराद्वा ।
द्वारावती वश्यवशं निरोधी नयोदितो मध्यमतोऽमरा श्रीः॥ ५ ॥

(दैवज्ञपण्डितसूर्यस्य रामकृष्णविलोमकाव्यात्)

आसुरं कुलमनादरणीयं चित्तमेतदमलीकरणीयम् ।

बारम्बार वन्दना करता हूँ ॥२॥ वने चरामः (वनमें विचरण करते हैं) वस्वाहरामः (पथिकोंके धनको लूटकर ले आते हैं), नदीं तरामः (नदीको तैरकर भाग जाते हैं), न भयं स्मरामः (हमें किसी भयकी याद भी नहीं रहती)—इस प्रकार वनमें बातें करते हुए किरात लोग भी मुखसे बारम्बार रामशब्दका उच्चारण हो जानेसे मुक्तिपदको प्राप्त हो गये ॥ ३ ॥ बड़े-बड़े मुनियों, योगिराजों, यतिवरों, देवेश्वरों और हनुमान्‌जीसे सदा सेव्य, चित्स्वरूप, लोकपालक, परमानन्ददाता, पवित्र शरीरवाले, पूर्णस्वरूप, देवगुरु, जानकीवल्लभ रमापति राम मेरे चित्तमें सदा रमण करें ॥ ४ ॥ जिसने सीतापति रामचन्द्रके और अपने बीचमें प्रकटित प्रपञ्चको विलीन कर दिया है अथवा चित्तको संसारसे हटाकर द्वारिकावासी कृष्णमें निरोध कर दिया है, वही धीर है; क्योंकि इसीसे मोक्ष-लक्ष्मीकी प्राप्ति होती है ॥ ५ ॥ दुष्ट जनोंकी उपेक्षा

रामधाम शरणीकरणीयं लीलया भवजलं तरणीयम् ॥ ६ ॥
अहो विचित्रं तव राम चेष्टितं मनुष्यभावेन विमोहितं जगत् ।
चलस्यजस्रं चरणादिवर्जितः सम्पूर्ण आनन्दमयोऽतिमायिकः *
यत्पादपङ्कजपरागपवित्रगात्रा
भागीरथी भवविरञ्चिमुखान्पुनाति ।
साक्षात्स एव मम दृग्विषयो यदास्ते
किं वर्ण्यते मम पुराकृतभागधेयम् ॥८॥*
मर्त्यावतारे मनुजाकृतिं हरिं रामाभिधेयं रमणीयदेहिनम् ।
धनुर्धरं पद्मविशाललोचनं भजामि नित्यं न परान्भजिष्ये ॥९॥*
यत्पादपङ्कजरजः श्रुतिभिर्विमृग्यं
यन्नाभिपङ्कजभवः कमलासनश्च ।

करनी चाहिये, इस चित्तको निर्मल करना चाहिये, रामके प्रभावकी शरण लेनी चाहिये; इस प्रकार अनायास ही भवसागरको पार करना चाहिये ॥६॥ [अहल्या कहती है] हे राम ! आपकी लीला विचित्र है, संसार आपको मनुष्य समझकर मोहित हो रहा है; आप पूर्ण आनन्दमय और अत्यन्त मायावी हैं; क्योंकि चरणादिसे रहित होकर भी सदा चलते रहते हैं ॥ ७ ॥ जिनके चरण-कमलोंकी धूलिसे पवित्र अङ्गवाली गङ्गा, शिव-ब्रह्मादिको पवित्र करती है, साक्षात् वही राम मेरी आँखोंके सामने उपस्थित हैं, इसलिये मेरे पूर्वसञ्चित सौभाग्यका क्या वर्णन किया जाय ? ॥ ८ ॥ मर्त्यलोकके अवतारोंमें मनुष्यका रूप धारण करनेवाले, सुन्दर शरीरवाले, धनुषधारी, कमलके समान विशाल नेत्रवाले, राम-नामधारी हरिका ही मैं नित्य भजन करूँगी, दूसरोंका नहीं ॥ ९ ॥ श्रुतियोंद्वारा जिनके चरण-कमलकी रज ढूँढ़ी जाती है, जिनके नाभि-कमलसे ब्रह्मा उत्पन्न हुए

---

* (अध्यात्मरामायणे १ । ५ । ४४, ४५, ४६)

यन्नामसाररसिको भगवान्पुरारि-
स्तं रामचन्द्रमनिशं हृदि भावयामि ॥१०॥*

भक्तिर्मुक्तिविधायिनी भगवतः श्रीरामचन्द्रस्य हे
लोकाः कामदुघाङ्घ्रिपद्मयुगलं सेवध्वमत्युत्सुकाः।
नानाज्ञानविशेषमन्त्रविततिं त्यक्त्वा सुदूरे भृशं
रामं श्यामतनुं स्मरारिहृदये भान्तं भजध्वं बुधाः ॥११॥†

तव दासस्य दासानां शतसंख्योत्तरस्य वा।
दासीत्वे नाधिकारोऽस्ति कुतः साक्षात्तवैव हि ॥१२॥†

जानन्तु राम तव रूपमशेषदेश-
कालाद्युपाधिरहितं घनचित्प्रकाशम्।
प्रत्यक्षतोऽद्य मम गोचरमेतदेव
रूपं विभातु हृदये न परं विकाङ्क्षे ॥१३॥‡

हैं, भगवान् शङ्कर जिनके नाम-तत्त्वके प्रेमी हैं, उन श्रीरामचन्द्रकी मैं सदा हृदयमें भावना करती हूँ ॥१०॥ हे लोगो ! भगवान् रामकी भक्ति मुक्ति देनेवाली है, इसलिये कामधेनुके समान उनके चरणारविन्दकी उत्कण्ठा-पूर्वक सेवा करो, हे विद्वानो ! नाना प्रकारके ज्ञान और मन्त्रोंके प्रपञ्चको दूरसे ही त्यागकर, महादेवजीके हृदयमें प्रकाशित होनेवाले श्यामशरीर रामका बारम्बार भजन करो ॥ ११ ॥ [शबरीने कहा—] हे राम ! मेरा तो आपके दासके दासोंमें सैकड़ोंके पीछे भी आपकी दासताका अधिकार नहीं है; भला साक्षात् आपकी दासी तो हो ही कैसे सकती हूँ ? ॥ १२ ॥ हे राम ! अनन्त देश और काल आदिकी उपाधिसे रहित आपके चिदानन्दघनरूपको कुछ लोग भले ही जाना करें, पर मेरे हृदयमें आज जिसका प्रत्यक्ष दर्शन हो रहा है आपका यही सगुणरूप प्रकाशित

---

* (अध्या० रा० १ । ५ । ४७) † (अध्या० रा० ३ । १० । ४४, १८)
‡ (अध्या० रा० ३ । २ । ३४)

****

त्वत्पादपद्मार्पितचित्तवृत्तिस्त्वन्नामसङ्गीतकथासु वाणी ।
त्वद्भक्तसेवानिरतौ करौ मे त्वदङ्गसङ्गं लभतां मदङ्गम् ॥१४॥†
त्वन्मूर्तिभक्तान् स्वगुरुं च चक्षुः पश्यत्वजस्रं स शृणोतु कर्णः ।
त्वज्जन्मकर्माणि च पादयुग्मं व्रजत्वजस्रं तव मन्दिराणि॥१५॥†
अहं भवन्नाम गृणन् कृतार्थो वसामि काश्यामनिशं भवान्या ।
मुमूर्षमाणस्य विमुक्तयेऽहं दिशामि मन्त्रं तव रामनाम ॥१६॥†

नान्या स्पृहा रघुपते हृदयेऽस्मदीये
सत्यं वदामि च भवानखिलान्तरात्मा ।
भक्तिं प्रयच्छ रघुपुङ्गव निर्भरां मे
कामादिदोषरहितं कुरु मानसं च ॥१७॥
(श्रीतुलसीदासस्य रामचरितमानसे ५ । २)

हो, मैं औरकी आकाङ्क्षा नहीं करता ॥ १३ ॥ मेरी चित्तवृत्ति आपके चरण-कमलोंमें लगे, वाणी आपके नामसंकीर्तन तथा कथा-वार्तामें लगे, हाथ आपके भक्तोंकी सेवामें लगे रहें और मेरे अङ्ग आपके अङ्गोंका सङ्ग प्राप्त करें ॥ १४ ॥ हे भगवन् ! मेरे नेत्र आपके स्वरूप और आपके भक्तोंको तथा अपने गुरुदेवको देखा करें, कान आपके जन्म और कर्मकी लीलाओंको सदा सुनें तथा पैर सदा आपके मन्दिर और तीर्थोंमें भ्रमण करें ॥ १५ ॥ [शिवजीने कहा—हे राम !] मैं आपका नाम जपता हुआ कृतार्थ होकर, पार्वतीके साथ सर्वदा काशीमें निवास करता हूँ और मरते हुए लोगोंको मुक्तिके लिये, आपके राम-नामरूपी तारक मन्त्रका उपदेश करता रहता हूँ ॥ १६ ॥ हे रघुनाथ ! मेरे हृदयमें दूसरी अभिलाषा नहीं है, मैं आपसे सत्य कह रहा हूँ, क्योंकि आप सबके अन्तरात्मा हैं । हे रघुश्रेष्ठ ! मुझे पूर्ण भक्ति दें और मेरे चित्तको काम आदि दोषोंसे रहित कर दें ॥१७॥

---

† (अध्यात्म० रा० ४ । १ । ९१-९२; ६ । १५ । ६२)

कोशलेन्द्रपदकञ्जमञ्जुलौ कोमलावजमहेशवन्दितौ।
जानकीकरसरोजलालितौ चिन्तकस्य मनभृङ्गसङ्गिनौ ॥१८॥*

ब्रह्माम्भोधिसमुद्भवं कलिमलप्रध्वंसनं चाव्ययं
श्रीमच्छम्भुमुखेन्दुसुन्दरवरं संशोभितं सर्वदा।
संसारामयभेषजं सुमधुरं श्रीजानकीजीवनं
धन्यास्ते कृतिनः पिबन्ति सततं श्रीरामनामामृतम् १९*

नीलाम्बुजश्यामलकोमलाङ्गं सीतासमारोपितवामभागम्।
पाणौ महासायकचारुचापं नमामि रामं रघुवंशनाथम् ॥२०॥*

सान्द्रानन्दपयोदसौभगतनुं पीताम्बरं सुन्दरं
पाणौ बाणशरासनं कटिलसत्तूणीरभारं वरम्।

कोशलेन्द्र भगवान् रामचन्द्रजीके सुन्दर चरणरूपी कमल कोमल हैं, ब्रह्मा और शिव उनकी वन्दना करते हैं, जानकीजीके कर-कमलोंसे उनकी सेवा होती है और भक्तोंके मनरूपी भौंरें, उनपर लुभाये रहते हैं ॥ १८ ॥ जो ब्रह्मरूपी समुद्रसे उत्पन्न हुआ है, कलि-कल्मषका ध्वंस करनेवाला है, अव्यय है, सदा श्रीमहादेवजीके सुन्दर मुखचन्द्रमें सुशोभित है और संसाररूपी रोगकी महौषधि है, अत्यन्त मधुर है, तथा श्रीजानकीजीका जीवनाधार है, उस राम-नामरूपी अमृतका जो निरन्तर पान करते हैं, वे सुकृतीजन धन्य हैं ॥ १९ ॥ जिनका नील कमलके समान अतिसुन्दर श्याम शरीर है, जिन्होंने वाम भागमें श्रीसीता-जीको बिठा रखा है तथा जिनके हाथोंमें महान् धनुष और सुन्दर बाण हैं, उन रघुवंशनाथ श्रीरामको प्रणाम करता हूँ ॥ २० ॥ स्निग्ध आनन्द-पयोदके सदृश जिनका मनोहर शरीर है, जो सुन्दर हैं, पीताम्बर धारण किये हुए हैं, जिनके हाथोंमें धनुष-बाण और कमरमें सुन्दर तरकस

---

* (श्रीतुलसीदासस्य रामचरितमानसे)

राजीवायतलोचनं धृतजटाजूटेन संशोभितं
सीतालक्ष्मणसंयुतं पथि गतं रामाभिरामं भजे ॥२१॥*
केकीकण्ठाभनीलं सुरवरविलसद्विप्रपादाब्जचिह्नं
शोभाढ्यं पीतवस्त्रं सरसिजनयनं सर्वदा सुप्रसन्नम्।
पाणौ नाराचचापं कपिनिकरयुतं बन्धुना सेव्यमानं
नौमीड्यं जानकीशं रघुवरमनिशं पुष्पकारूढरामम् २२*
ध्येयं सदा परिभवघ्नमभीष्टदोहं
तीर्थास्पदं शिवविरञ्चिनुतं शरण्यम्।
भृत्यार्तिहं प्रणतपाल भवाब्धिपोतं
वन्दे महापुरुष ते चरणारविन्दम् ॥२३॥
(भाग० ११।५।३३)

सुशोभित है, जिनके कमलके समान विशाल नेत्र हैं, जो जटाजूट धारण किये शोभायमान हैं, सीता और लक्ष्मणके सहित वन्य पथपर चल रहे हैं, उन अति अभिराम रामको भजता हूँ ॥२१॥ मयूरकण्ठके समान जिनका नील शरीर है, जो देवेश्वर हैं, जिनके वक्षःस्थलमें विप्रवर भृगुका चरणचिह्न सुशोभित है, जो शोभाशाली हैं, जिनके पीत वस्त्र हैं, कमल-जैसे नेत्र हैं, जो सदा प्रसन्न हैं, जिनके करकमलोंमें धनुष और बाण हैं, जो वानरोंकी सेनासे घिरे हुए और श्रीलक्ष्मणजीसे सेवित हैं; उन परमस्तुत्य पुष्पकारूढ, जानकीनाथ रघुनाथजीको नमस्कार है ॥ २२ ॥ हे शरणागतरक्षक महापुरुष! आपके उन चरणारविन्दोंको नमस्कार है, जो सदा ध्यान करनेके योग्य, अनिष्ट दूर करनेवाले एवं इच्छित फलदायक हैं, तीर्थोंके आधारस्वरूप हैं, शिव-ब्रह्मादिसे वन्दित हैं, शरणागतवत्सल हैं, अपने दासोंका दुःख दूर करनेवाले तथा संसारसागरके लिये नौकारूप हैं ॥ २३ ॥

* (श्रीतुलसीदासस्य रामचरितमानसे)

त्यक्त्वा सुदुस्त्यजसुरेप्सितराज्यलक्ष्मीं
धर्मिष्ठ आर्यवचसा यदगादरण्यम् ।
मायामृगं दयितयेप्सितमन्वधाव-
द्वन्दे महापुरुष ते चरणारविन्दम् ॥२४॥
(भाग० ११।५।३४)

पेयं पेयं श्रवणपुटके रामनामाभिरामं
ध्येयं ध्येयं मनसि सततं तारकं ब्रह्मरूपम् ।
जल्पञ्जल्पन् प्रकृतिविकृतौ प्राणिनां कर्णमूले
वीथ्यां वीथ्यामटति जटिलः कोऽपि काशीनिवासी २५
(स्कन्दपुराणे काशीखण्डे)

इदं शरीरं शतसन्धिजर्जरं पतत्यवश्यं परिणामि पेशलम् ।
किमौषधैः क्लिश्यसि मूढ दुर्मते निरामयं रामरसायनं पिब॥२६॥

कल्याणानां निधानं कलिमलमथनं पावनं पावनानां
पाथेयं यन्मुमुक्षोः सपदि परपदप्राप्तये प्रस्थितस्य ।

हे धर्मात्मन् महापुरुष ! मैं आपके उन चरणारविन्दोंको नमस्कार करता हूँ, जो दुस्त्यज और देवताओंद्वारा वाञ्छित राजलक्ष्मीको पिताकी आज्ञासे छोड़कर वनको चले गये और प्रिया सीताद्वारा इच्छित मायामृगके पीछे दौड़े ॥ २४ ॥ कानोंसे सदा मनोहर राम-नामका श्रवण करो और मनमें सदा तारक ब्रह्मका ध्यान करो, इस प्रकार प्राकृतशरीरके विनाशकालमें प्रत्येक स्त्री-पुरुषके कानोंमें कहते हुए, कोई काशीनिवासी जटाधारी (शङ्कर) वहाँकी गली-गलीमें चक्कर लगा रहा है॥ २५ ॥ यह सैकड़ों सन्धियोंसे जर्जरित, परिणामी और कोमल देह अवश्य नष्ट हो जायगा, फिर हे मूढ़ ! हे दुर्बुद्धे ! औषधियोंके पचड़ेमें क्यों पड़ा है ? निरामय राम-रसायनका ही पानकर ॥ २६ ॥ जो कल्याणोंका निधान है, कलिमलको मथन करनेवाला है, पावनको भी पावन बनानेवाला है, परमपदकी प्राप्तिकेलिये प्रस्थान करनेवाले मुमुक्षु पुरुषोंका पाथेय है,

विश्रामस्थानमेकं कविवरवचसां जीवनं सज्जनानां
बीजं धर्मद्रुमस्य प्रभवतु भवतां भूतये रामनाम ॥२७॥†

अहल्या पाषाणः प्रकृतिपशुरासीत् कपिचमू-
र्गुहोऽभूच्चाण्डालस्त्रितयमपि नीतं निजपदम् ।
अहं चित्तेनाश्मा पशुरपि तवार्चादिकरणे
क्रियाभिश्चाण्डालो रघुवर न मामुद्धरसि किम् ॥२८॥*

नदीं तरामो वसुधां हरामो गोभिश्चरामः सुपथं सरामः ।
इति ब्रुवन्तः खलु रामनाम मुहुर्मुहुर्मुक्तिपदं प्रयामः ॥२९॥

वामे भागे जनकतनया राजते यस्य नित्यं
भ्रातृप्रेमप्रवणहृदयो लक्ष्मणो दक्षिणे च ।

कवियोंकी वाणीका जो एकमात्र विश्रामस्थान और सत्पुरुषोंका जीवनस्वरूप है; ऐसा धर्मवृक्षका बीजरूप राम-नाम आपके ऐश्वर्यका साधक हो ॥ २७ ॥ हे राम ! अहल्या पाषाण थी, वानरसेना स्वभावसे ही पशु थी और गुह चाण्डाल था; पर आपने इन तीनोंको ही अपने परमधामकी प्राप्ति कराई; मैं भी अपने चित्तसे तो पाषाण हूँ, आपकी पूजा-अर्चा आदि करनेमें पशु हूँ और अपने कर्मोंसे चाण्डाल हूँ, तो भी हे रघुवर ! आप मेरा उद्धार क्यों नहीं करते ? ॥ २८ ॥ (अरण्यवासियोंने कहा—) नदीं तरामः (हम नदी पार करते हैं), वसुधां हरामः (पृथ्वी जोतते हैं), गोभिश्चरामः (गौओंके साथ चलते हैं), सुपथं सरामः (सुन्दर मार्गसे जाते हैं), इस प्रकार बार-बार राम-नाम लेते हुए हम मुक्तिपदपर पहुँच जाते हैं ॥ २९ ॥ जिनके वाम भागमें नित्य श्रीजानकीजी विराजती हैं, दाएँ भागमें, जिनका हृदय भ्रातृ-प्रेममें सना हुआ है वे, श्रीलक्ष्मणजी सुशोभित हैं और जिनके

† ईश्वरपुरिस्वामिनः 'भवभूतेः' इति केचित् । * (रहीमकवेः)

पादाम्भोजे पवनतनयः श्रीमुखे बद्धनेत्रः
साक्षाद्ब्रह्म प्रणतवरदं रामचन्द्रं भजे तम् ॥३०॥*

आदौ रामतपोवनादिगमनं हत्वा मृगं काञ्चनं
वैदेहीहरणं जटायुमरणं सुग्रीवसम्भाषणम् ।
बालीनिग्रहणं समुद्रतरणं लङ्कापुरीदाहनं
पश्चाद्रावणकुम्भकर्णहननं चैतद्धि रामायणम् ॥३१॥†

कदा वा साकेते विमलसरयूतीरपुलिने
चरन्तं श्रीरामं जनकतनयालक्ष्मणयुतम् ।
अये राम स्वामिञ्जनकतनयावल्लभ विभो
प्रसीदेत्याक्रोशन्निमिषमिव नेष्यामि दिवसान् ॥३२॥

चरणकमलोंके पास पवनपुत्र श्रीहनुमान्‌जी श्रीमुखमें एकटक दृष्टि लगाये हुए बैठे हैं; उन मूर्तिमान् ब्रह्म, भक्तवरदायक रघुनायककी मैं स्तुति करता हूँ ॥ ३० ॥ प्रथम श्रीरामचन्द्रजीका तपोवनादिमें जाना, फिर कनक-मृग मारीचका मारा जाना, तदुपरान्त सीताजीका हरण, जटायुका मरण, सुग्रीवसे वार्तालाप, बालीका वध, समुद्रोल्लङ्घन, लङ्काका दाह और सबके पश्चात् रावण कुम्भकर्णादिका मारा जाना—बस, इतनी ही रामायण है ॥ ३१ ॥ साकेतलोक (अयोध्या) में सरयूके अति कमनीय कूलपर, श्रीजानकी और लक्ष्मणजीसहित टहलते हुए भगवान् श्रीरामसे 'हे राम ! हे स्वामिन् ! हे वैदेहीवल्लभ ! हे विभो ! प्रसन्न होइये'—ऐसा कहते हुए निमिषकी तरह दिनोंको कब बिताऊँगा ? ॥३२॥

---

* श्रीपूर्णचन्द्रस्योद्भटसागरतः । † श्रीमदग्निवेशस्य मूलरामायणे । अत्र 'हेम्नो कुरोर्मारणम्', 'बालीनिर्दलनम्' 'पौलस्त्यस्य वधो जयो रघुपतेश्चैतद्धि रामायणम्' इति पुस्तकान्तरे पाठभेदाः ।

रामनाम जपतां कुतो भयं सर्वतापशमनैकभेषजम् ।
पश्य तात मम गात्रसन्निधौ पावकोऽपि सलिलायतेऽधुना ॥

रसने त्वं रसज्ञेति वृथैव स्तूयसे बुधैः ।
अपारमाधुरीधामरामनामपराङ्मुखी ॥३४॥

क्षालयामि तव पादपङ्कजे नाथ दारुदृषदोः किमन्तरम् ।
मानुषीकरणचूर्णमस्ति ते पादयोरिति कथा प्रथीयसी ॥३५॥

न्यायावधिः श्रीनिकायाकरस्त्रिभुवनायावताररसिक-
श्छायावधीरितकलाया वलिः कनकदायादपट्टवसनः ।
जायास्पृहाजटिलमायातनूविहितकायाभिमानिचरितः
पायाददो जगदपायाददभ्रकरुणाया निधी रघुपतिः ॥३६॥

[प्रह्लाद-] सम्पूर्ण तापोंकी एकमात्र ओषधि राम-नामको जपनेवालोंको कैसे भय हो सकता है ? हे तात ! (हिरण्यकशिपु) देखो मेरे शरीरके पास आकर तो अब आग भी जलके समान शीतल हो रही है ॥ ३३ ॥ हे रसने ! तुझे रसज्ञा कहकर बुद्धिमान् व्यर्थ ही तेरी स्तुति करते हैं; क्योंकि तू अपार माधुर्यधाम राम-नामसे विमुख हो रही है ॥ ३४ ॥ [भगवान् रामके नौकारूढ़ होनेके पूर्व नाविक बोला-] आपके चरणोंमें [पत्थरको] मनुष्य बना देनेवाली धूलि है, ऐसी बात प्रसिद्ध है, और हे नाथ ! लकड़ी और पत्थरमें क्या अन्तर है ? अतः मैं आपके चरण-कमल धोऊँगा ॥ ३५ ॥ जो न्यायकी चरम सीमा, शोभा-समूहके आगार और त्रिभुवनको सुख पहुँचानेके निमित्त अवतार धारण करनेके रसिक हैं, जिन्होंने अपनी कान्तिसे चन्द्रमाको भी तिरस्कृत कर दिया है, जो सुनहले रङ्गके पीताम्बर धारण करते हैं, जिन्होंने मायामय शरीर धारणकर जटाधारी वेषमें अपनी स्त्री (सीता) के लिये अत्यन्त स्पृहा प्रकट करते हुए देहाभिमानी मनुष्योंके समान लीला की है वे अनन्त दयाके सागर श्रीरामचन्द्रजी इस जगत्‌की विनाशसे रक्षा करें ॥३६॥

श्रीसीतासूक्तिः

पुण्यराशिरिव मैथिलप्रभो रामलोचनचकोरचन्द्रिका ।
दीपितार्चिरिव रक्षसां सदा जानकी विजयतां यशोधना ॥३७॥

(पाण्डेयरामनारायणदत्तशास्त्रिणः)

श्रीहनुमत्सूक्तिः

तीर्त्वा क्षारपयोनिधिं क्षणमथो गत्वा श्रियः सन्निधौ
दत्त्वा राघवमुद्रिकामपशुचं कृत्वा प्रविश्याटवीम् ।
भङ्क्त्वाऽशेषतरुन्निहत्य बहुशो रक्षोगणांस्तत्पुरीं
दग्ध्वादाय मणिं रघूत्तममगाद्वीरो हनूमान्कपिः ॥३८॥*

अतुलितबलधामं स्वर्णशैलाभदेहं
दनुजवनकृशानुं ज्ञानिनामग्रगण्यम् ।
सकलगुणनिधानं वानराणामधीशं
रघुपतिवरदूतं वातजातं नमामि ॥३९॥†

मिथिलेशके पुण्य-पुञ्ज-सी, श्रीरामचन्द्रजीके लोचन-चकोरोंको आनन्द देनेवाली चन्द्रिका-सी और राक्षसोंके लिये जलती हुई आगकी ज्वाला-सी, यशस्विनी जानकीजीकी जय हो ॥ ३७ ॥

वीर श्रेष्ठ कपिवर हनुमान्जी क्षणमात्रमें ही समुद्रको लाँघ, सीताजीके पास पहुँच, उन्हें श्रीरामकी मुद्रिका अर्पण करके शोकरहित कर, फिर अशोकवनमें घुसकर सभी वृक्षोंको तोड़, बहुतसे राक्षसोंको मार, तथा उनकी पुरी लङ्काको जला सीताजीकी चूड़ामणि ले श्रीरामजीकी सेवामें आ पहुँचे ॥ ३८ ॥ जो अतुलित बलके आगार, सुमेरुके समान शरीरवाले, दैत्यकुलरूप वनके लिये अग्निके समान, ज्ञानियोंमें अग्रगण्य, सर्वगुणसम्पन्न, वानरोंके अधीश्वर और श्रीरघुनाथजीके श्रेष्ठ दूत हैं, उन श्रीपवननन्दनको मैं प्रणाम करता हूँ ॥ ३९ ॥

---

* श्रीजयदेवस्य रामगीतगोविन्दात् । † श्रीतुलसीदासस्य ।

अञ्जनानन्दनं वीरं जानकीशोकनाशनम् ।
कपीशमक्षहन्तारं वन्दे लङ्काभयङ्करम् ॥४०॥
कदा सीताशोकत्रिशिखजलदं चाञ्जनिसुतम्
चिरञ्जीवं लोके भजकजनसंरक्षणकरम् ।
अये वायोः सूनो रघुवरपदाम्भोजमधुप
प्रसीदेत्याक्रोशन् निमिषमिव नेष्यामि दिवसान् ॥४१॥
देहदृष्ट्या तु दासोऽहं जीवदृष्ट्या त्वदंशकः ।
वस्तुतस्तु त्वमेवाहमिति मे निश्चिता मतिः ॥४२॥
वीताखिलविषयेच्छं जातानन्दाश्रुपुलकमत्यच्छम् ।
सीतापतिदूताद्यं वातात्मजमद्य भावये हृद्यम् ॥४३॥
(श्रीमदाद्यशङ्कराचार्यस्य हनुमत्पञ्चरत्नस्तोत्रात्)

जो माता अञ्जनीके लाड़िले, अति वीर, श्रीजानकीजीका शोक दूर करनेवाले, अक्षयकुमारको मारनेवाले और लङ्काको भयभीत करनेवाले हैं, उन कपीश्वर (श्रीहनुमान्‌जी) की वन्दना करता हूँ ॥ ४० ॥ जो सीताकी शोकाग्निको बुझानेमें मेघसदृश हैं, उन भक्तजनोंकी रक्षा करनेवाले, चिरञ्जीवी, अञ्जनीनन्दन हनुमान्‌के प्रति 'हे पवननन्दन ! हे रामके चरणारविन्दोंके भ्रमर ! आप प्रसन्न होइये' इस प्रकार कहते हुए मैं अपने दिनोंको क्षणके समान कब बिताऊँगा ? ॥ ४१ ॥ (हनुमान्‌जीने कहा कि हे राम !) देहदृष्टिसे मैं आपका दास हूँ, जीवरूपसे आपका अंश हूँ तथा परमार्थ दृष्टिसे तो आप और मैं एक ही हैं, यह मेरा निश्चित मत है ॥ ४२ ॥ जिनके हृदयसे समस्त विषयोंकी इच्छा दूर हो गई है, [रामके प्रेममें विभोर हो जानेके कारण] जिनके नेत्रोंमें आनन्दके आँसू और शरीरमें रोमाञ्च हो रहे हैं, जो अत्यन्त निर्मल हैं, सीतापति रामचन्द्रजीके प्रधान दूत हैं, मेरे हृदयको प्रिय लगनेवाले उन पवन-कुमार हनूमान्‌जीका मैं

****

तरुणारुणमुखकमलं करुणारसपूरपूरितापाङ्गम् ।
संजीवनमाशासे मञ्जुलमहिमानमञ्जनाभाग्यम् ॥४४॥*
शम्बरवैरिशरातिगमम्बुजदलविपुललोचनोदारम् ।
कम्बुगलमनिलदिष्टं विम्बज्वलितोष्ठमेकमवलम्बे॥४५॥*
दूरीकृतसीतार्तिः प्रकटीकृतरामवैभवस्फूर्तिः ।
दारितदशमुखकीर्तिः पुरतो मम भातु हनुमतो मूर्तिः ४६*
वानरनिकराध्यक्षं दानवकुलकुमुदरविकरसदृक्षम् ।
दीनजनावनदीक्षं पवनतपःपाकपुञ्जमद्राक्षम् ॥४७॥*
एतत्पवनसुतस्य स्तोत्रं यः पठति पञ्चरत्नाख्यम् ।
चिरमिह निखिलान्भोगान्भुक्त्वा श्रीरामभक्तिभाग्भवति*

ध्यान करता हूँ ॥ ४३ ॥ बाल रविके समान जिनका मुखकमल लाल है, करुणारसके समूहसे जिनके लोचन-कोर भरे हुए हैं, जिनकी महिमा मनोहारिणी हैं, जो अञ्जनाके सौभाग्य हैं, जीवनदान देनेवाले उन हनुमान्जीसे मुझे बड़ी आशा है ॥ ४४ ॥ जो कामदेव-के बाणोंको जीत चुके हैं, जिनके कमलपत्रके समान विशाल एवं उदार लोचन हैं, जिनका शङ्खके समान कण्ठ और विम्बफलके समान अरुण ओष्ठ है, जो पवनके सौभाग्य हैं, एकमात्र उन हनुमान्जीकी ही मैं शरण लेता हूँ ॥ ४५ ॥ जिन्होंने सीताजीका कष्ट दूर किया और श्रीरामचन्द्रजीके ऐश्वर्यकी स्फूर्तिको प्रकट किया, दशवदन रावणकी कीर्तिको मिटानेवाली वह हनुमान्जीकी मूर्ति मेरे सामने प्रकट हो ॥ ४६ ॥ जो वानर-सेनाके अध्यक्ष हैं, दानवकुलरूपी कुमुदोंके लिये सूर्यकी किरणोंके समान हैं, जिन्होंने दीनजनोंकी रक्षाका व्रत ले रखा है, पवनदेवकी तपस्याके परिणामपुञ्ज उन हनूमान्जीका मैंने दर्शन किया ॥ ४७ ॥ पवन-कुमार हनूमान्जीके इस पञ्चरत्ननामक स्तोत्रका जो पाठ करेगा वह इस लोकमें चिर-कालतक समस्त भोगोंको भोगकर श्रीराम-भक्तिका भागी होगा ॥ ४८ ॥

* (श्रीमदाद्यशङ्कराचार्यस्य हनुमत्पञ्चरत्नस्तोत्रात्)